

उत्तर काण्ड (दोहे 115 से 130 तक) की विषयवस्तु

~ डॉ. अमरेन्द्र नाथ त्रिपाठी

(हिंदी विभाग, एसजीजीएस कॉलेज, पटना सिटी)

[कक्षा, स्नातक - प्रथम वर्ष (प्रतिष्ठा), में पढाए गए को दुहराने (रिवीजन) के लिए यह आलेख]

उत्तर काण्ड रामचरित मानस का आखिरी सोपान या काण्ड है। इसमें तुलसी दास द्वारा लिखी रामकथा अर्थात् रामचरित मानस का उपसंहार प्रस्तुत किया गया है। इसी काण्ड में राम सीता, लक्ष्मण और लंका में विजय की सहयोगी रही वानस सेना के साथ वापस अयोध्या आते हैं। राम का अयोध्यावासी स्वागत करते हैं। भरत खूब आनंदित होते हैं। नगर में दीवाली सी धूम मचती है। विधिवत रीति से राम का राज्याभिषेक होता है। वे प्रजा को स्नेहोपदेश देते हैं। कालान्तर में चारों भाइयों के दो-दो सुपुत्र जन्म लेते हैं। एक आदर्श रामराज्य सबकी आँखों के सामने प्रकट होता है। सब उसमें सुखी रहते हैं।

उत्तरकाण्ड के दोहे 115 से 130 तक ज्ञान व भक्ति के बारे में बातें की गयी हैं, गरुड़ और काकभुशुण्डि के बीच का संवाद है, भजन की महिमा का कथन है और रामायण का माहात्म्य बताया गया है। यह हिस्सा उत्तरकाण्ड और रामचरित मानस का आखिरी हिस्सा है। गरुड़ के सवालों का समाधान काकभुशुण्डि करते हैं। इसी क्रम में तुलसीदास की जीव, जगत व ईश्वर को लेकर जो दार्शनिक मान्यता है वह भी देखी जा सकती है।

काकभुशुण्डि कहते हैं कि माया और भक्ति दोनों स्त्रीवर्गीय हैं। यह सब जानते हैं। फिर भी यह सत्य है कि रघुवीर को भक्ति ही प्यारी है। माया बेचारी तो नटिनी(नाचने वाली) मात्र है। इस तथ्य को मुनि-ज्ञानी जानते हैं। इसलिए वे सदैव सुखों की खान भक्ति का ही आश्रय

लेते हैं, माया का नहीं। रघुपति के इस दुर्लभ रहस्य को जानने के कारण रामभक्त को स्वप्न में भी मोह नहीं होता :

यह रहस्य रघुपति कर बेगि न जानइ कोइ।

जो जानइ रघुपति कृपा सपनेहुँ मोह न होइ॥

यह माया ही है जो जीव को अज्ञान में डाल देती है। जीव यह भूल जाता है कि वह भी ईश्वर का अंश है। फिर वह वैसे ही बंधन में बंधा होता है जैसे तोता या बन्दर। ऐसा कोई बंधन है नहीं लेकिन अज्ञान ही ऐसा विकट बंधन साबित होता है कि वह इसी को सच मान लेता है। ज्ञान ही इससे मुक्ति दिलाता है। इसका संयोग कभी कभी ईश्वर बना देता है तो यह अज्ञान ग्रंथि छूट जाती है :

अस संजोग ईस जब करई।

तबहुँ कदाचित सो निरुअरई॥

ज्ञान का मार्ग दुधारी तलवार के जैसा है। इससे गिरते देर नहीं लगती। तब आदमी सब नष्ट कर देता है। जो ज्ञानमार्ग को निबाह ले जाता है, वही कैवल्य को प्राप्त होता है। इस तरह जाना जा सकता है कि यह कितना दुर्लभ है। जबकि दूसरी तरफ रघुपति का भजन इसी अत्यंत दुर्लभ मुक्ति को बिना इच्छा किये भी, जबरदस्ती, देने वाला है :

रामभजन सोइ मुकुति गोसाईं।

अनइच्छित आवइ बरिआई॥

रामभक्ति की महिमा का कथन उत्तरकाण्ड के इन अंशों में जोरदार ढंग से हुआ है। यह बताया गया है कि अनेक असंभव कार्य संभव हो सकते हैं लेकिन रामभक्ति से विमुख जीव कभी सुख को प्राप्त नहीं कर सकता। कछुए की पीठ पर बाल उग सकते हैं, बाँझ को पुत्र हो सकते हैं, आकाश में फूल खिल सकते हैं, मृगतृष्णा के जल से प्यास बुझ सकती है, खरगोश के

सर पर सींग निकल सकती है, अन्धकार सूर्य का नाश कर सकता है लेकिन रामभक्ति से जो विमुख है वह सुख नहीं पा सकता। बर्फ से भले आग प्रकट हो जाय लेकिन राम विमुख के लिए सुख प्रकट नहीं हो सकता :

हिम ते अनल प्रकट बरु होई।

विमुख राम सुख पाँव न कोई।।

तुलसीदास के यहां भगवद्भक्ति या भगवद्प्रेम को सर्वोत्तम बताया गया है। ज्ञान की महिमा का अस्वीकार नहीं किया गया है लेकिन प्रेम या भक्ति के द्वारा वह सब पाना कहीं अधिक सुगम और अनायास है जिसे निर्गुण या संत मत के अनुयायी पाने की साधना में रत रहते हैं। तुलसी दास ने निर्गुण मत का मजाक तो नहीं उड़ाया है जैसा सूर की गोपियों द्वारा ऊधव प्रसंग में दिखाई देता है, लेकिन वे सगुण की महिमा को अधिक तर्क देते हुए उसे सहज उपयोगी बताने का प्रयास अवश्य करते हैं। यद्यपि यह करते हुए वे टकराने के बजाय समन्वय करने का प्रयास करते हैं।

तुलसीदास सिर्फ सगुण व निर्गुण का ही समन्वय नहीं करते बल्कि अन्य पहले से चली आ रही चिंतन व उपासना की दृष्टियों का भी समन्वय करते हैं। इसी कारण पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उन्हें लोकनायक कहा है और उनके यहां समन्वय की चेष्टा को इसका मूलाधार माना है। उनका यह जो कथन है, जो उत्तरकाण्ड के इन अंशों पर भी लागू होता है, वह अत्यधिक महत्वपूर्ण है :

"लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएं, जातियाँ, आचार, निष्ठा और विचार पध्दतियाँ प्रचलित हैं। तुलसी का सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शास्त्र का समन्वय, गृहस्थ और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा और संस्कृति

का समन्वय, निर्गुण और सगुण का समन्वय, पांडित्य और अपांडित्य का समन्वय है।
रामचरितमानस शुरू से अंत तक समन्वय-काव्य है।"

रामचरित मानस के आखिरी दोहे (१३०-ख) में क्या खूब कवि-कौशल के साथ रामभक्ति की प्रार्थना की गयी है। जगत की सघन व दुर्जेय आसक्ति की विवशता व प्रबलता को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कहा गया है कि हे राम, आप मुझे वैसे ही प्रिय हों जैसे एक कामी को नारी और लोभी को धन प्यारा होता है :

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।

तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

नोट : विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित पुस्तक 'काव्य-कलश' (सम्पादक-देवदत्त राय) के आधार पर पाठ समावेशित हुआ है।